वैश्विक परिदृश्य पर स्त्री अधिकारों की ऐतिहासिक एवं अवधारणात्मक क्रान्ति

***प्रिया तिवारी**

स्त्रियों की स्थिति ही मूल रूप में किसी मानव समाज के भविष्य की निर्धारक होती है। विश्व उत्पादिका, पोषिका, शक्ति सम्पन्न महिलाएँ ही किसी समाज का स्वरूप निर्धारण करती हैं। महिलाओं के प्रति उपेक्षित जीवन मूल्यों के परिणामस्वरूप ही विश्व समाज में नाना प्रकार की बुराइयों को पनपने का अवसर मिलता है।

वर्तमान समय में मानवाधिकारों की बात करें तो इस संदर्भ में महिला मानवाधिकार एक ज्वलंत प्रश्न व मुद्दा है। 'मानवाधिकारों' की अवधारणा के प्रारंभ में 'मानवाधिकार' का अर्थ था 'पुरूषों के अधिकार'। महिलाओं को न तो 'मानव' की श्रेणी में रखा जाता था न ही उन्हें किसी भी प्रकार के मानवाधिकार की अधिकारिणी माना जाता था। उनका अस्तित्व पुरूष के संरक्षकत्व में ही सुरक्षित समझा जाता था। उन्हें ऐसे अधिकार ही प्राप्त होते थे जो पुरूष उन्हें प्रदान करें अन्यथा वे अधिकार विहिन पशुवत् जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य थीं।

कालांतर में वृहद और लम्बे संघर्श के पश्चात् यह विचार तिरोहित हो गया और 'महिला मानवाधिकार' की अवधारणा का अभ्युदय हुआ। जनमानस के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ और महिलाओं को मानव के रूप में स्वीकृति मिली। यह स्वीकार किया गया कि प्रकृति ने पुरूष एवं महिला को समान रूप से उत्पन्न किया है अतः महिला भी समान मानवाधिकारों की अधिकारिणी हैं। किन्तु यह स्वीकृति अकस्मात मिले किसी वरदान की तरह नहीं था अपितु इसके पीछे एक लम्बे संघर्ष और दृढ़ इच्छाशक्ति की कहानी है। जिस भी सीमा तक ये अधिकार महिलाओं को प्राप्त हो सके हैं वे अथक परिश्रम और प्रयास का परिणाम है जो वैचारिक और धरातलीय दोनों ही स्तर पर किये गये। प्रस्तुत शोधपत्र में स्त्री अधिकारों की प्राप्ति के पीछे के इतिहास और क्रान्ति के अवधारणात्मक स्तर को समझने का प्रयास किया गया है।

शोध के उद्देश्य :

- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जन जागरूकता फैलाने में महिला मानवाधिकार आंदोलनों की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालना।
- स्त्री मानवाधिकारों की प्राप्ति हेतु किये गये संघर्ष की ऐतिहासिक पड़ताल करना।
- स्त्री मानवाधिकारों के क्षेत्र में आयी क्रान्ति के अवधारणात्मक स्तर को समझना।

अध्ययन प्रविधि :

शोध प्रविधियों का चुनाव शोध की प्रकृति एवं प्रकार पर निर्भर करता है। चूंकि प्रस्तुत शोध की प्रकृति आनुभाविक न होकर वर्णनात्मक है, अतः शोध हेतु द्वितीयक तथ्यों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक तथ्यों के संकलन हेतु पुस्तकों, शोध–पत्रिकाओं, सम्पादित ग्रन्थों एवं इन्टरनेट का प्रयोग किया गया है। शोध की पद्धति मूलतः वर्णनात्मक है जिसमें सहायक पद्धतियों के रूप में ऐतिहासिक पद्धति, सामग्री विश्लेषण, पुस्तकालयी अध्ययन पद्धति इत्यादि का उपयोग किया गया है।

स्वतंत्र एवं सामाजिक प्राणी के रूप में अपने समग्र विकास हेतु अधिकारों की अपेक्षा मानवीय प्रकृति है। अधिकार मानवीय व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करते हैं और इस दृष्टि से वे अधिकार महत्वपूर्ण हो जाते हैं जो मनुष्य को मनुष्य होने के नाते प्राप्त होते हैं और मानवाधिकार कहलाते हैं। मानवाधिकार किसी देश या राज्य की आन्तरिक या घरेलू अधिकारिता के अंतर्गत नहीं आते अपितु ये विश्व मानवता के पक्ष में उसके संरक्षण एवं संवर्द्धन पर बल देते हैं। विश्व में मानव समाज सर्जना के दो भाग हैं–नर और नारी। दुनिया के किसी भी भू–भाग में निवास करने वाले विश्व मानव समाज के प्रत्येक सदस्य को चाहे वह नर हो या नारी सम्मानपूर्वक जीने का हक है। ये वे मानवीय अधिकार है जो सभी मानवों को इस आधार पर

*शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान, कुमाऊँ विश्वविद्यालय

मिले हैं क्योंकि वे मनुष्य है। जब मानवाधिकार के संकल्पनात्मक ढाँचे की बात की जाती है तो उसमें बहुत से अधिकारों को गिनाया जाता है। जो मनुष्य को मनुष्य होने के नाते प्राप्त होने चाहिए। ये सभी मानवाधिकार जो कि मनुष्यों को प्राप्त हैं स्त्रियों को भी प्राप्त होने चाहिए क्योंकि वे भी मानव हैं। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि केवल सामान्य मानवाधिकार ही महिला मानवाधिकारों को परिभाशित नहीं कर सकते वरन् इन अधिकारों में उन अधिकारों को गिना जाना भी समीचीन है जो कि एक स्त्री को स्त्री होने के नाते विशेष रूप से प्राप्त होने चाहिए। किन्तु सदियों से स्त्री इन अधिकारों से वंचित रही है यही कारण है कि उसके लिए मानवाधिकारों की प्राप्ति स्वयं एक मानवाधिकार है।[1]

इस संदर्भ में एलिजाबेथ केडी स्टेन्टन के सेनेकाफाल कन्वेशन में व्याप्त वे शिकायतें उल्लेखनीय है जिनके आधार पर महिला मानवाधिकारों का फ्रेमवर्क गढ़ा जा सकता है[2]–

1. कानून की दृष्टि में विवाहित महिलाएँ वैधानिक मृत्यु को प्राप्त हो जाती थीं।
2. महिलाओं को मत देने का अधिकार नहीं था।
3. विवाहित महिलाओं के पास सम्पत्ति का कोई अधिकार नहीं था।
4. पतियों द्वारा पत्नियों को उत्तरदायित्व की सीमाओं में बन्दी बना दिया जाता था तथा बेफिक्री के साथ उनको पीटने का वैधानिक अधिकार प्राप्त हो जाता था।
5. महिलाओं को सम्पत्ति कर देना पड़ता था। यद्यपि उन्हें इन करों को वसूलने सम्बन्धी कोई प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त था।
6. मुख्य व्यवसाय महिलाओं के लिए बन्द थे और जब महिलाएँ कार्य करती थीं तो वह पुरूषों द्वारा प्राप्त पारिश्रमिक का छोटा भाग पारिश्रमिक प्राप्त करती थी।
7. महिलाओं को औषधि और कानून जैसे व्यवसायों में प्रवेश की अनुमति नहीं थी।
8. महिलाओं के पास शिक्षा प्राप्त करने का कोई साधन नहीं था।
9. महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में महिला विद्यार्थियों को स्वीकार नहीं किया जाता था।
10. कुछ अपवादों को छोड़कर महिलाएँ चर्च सम्बन्धी मामलों में सहभागिता नहीं कर सकती थी।
11. महिलाओं का आत्मविश्वास तथा स्वाभिमान खत्म कर दिया गया था तथा उन्हें पूर्णतया पुरूष पर निर्भर बना दिया गया था।

इन शिकायतों से स्पष्ट है कि महिला सभी क्षेत्रों में अपने अधिकारों से वंचित थी। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वह मानव की श्रेणी में थी ही नहीं, अर्थात् उसका कोई मानवीय अस्तित्व नहीं था। उन्हें पुरूष द्वारा अपने मनोरंजन हेतु दास बना दिया गया था। सभी क्षेत्रों में वह अमानवीय परिस्थितियों से गुजर रही थी।[3] इस तरह जब हम महिला के मानवीय अधिकारों के अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्य पर दृष्टिपात करते हैं तो सबसे पहले यही तथ्य उभरता है कि महिला एक मानव है, वह पुरूष के समान ही बुद्धि की अधिकारिणी है अतः उसे वे सभी अधिकार प्राप्त होने चाहिए जो कि एक मानव को प्राप्त होते हैं।

सदियों से चले आ रहे पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं को उचित स्थान एवं मुक्ति दिलाने के लिए ही महिला अधिकारवाद अस्तित्व में आया। यह एक ऐसा विश्वव्यापी आन्दोलन है जो समकालीन समाज में महिलाओं की अधीनस्थ और अवपीड़ित स्थिति को समाप्त करके उन्हें मनुष्य के समकक्ष स्थान दिलाने का आकांक्षी है। 'डेविड जेरी एवं जूलिया जेरी' के शब्दों में–''यह एक सामान्य विश्वास है कि महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तनों की परिणति महिलाओं की मुक्ति में हो सकती है। वर्तमान समय में महिला अधिकारवाद एक जीवन्त और परिलक्षित सामाजिक आन्दोलन है।''[4]

महिला मानवाधिकारों के अवधारणीकरण में **मेरी वोल्सटन क्रॉफ्ट** को प्रारम्भिक चिंतकों में गिना जाता है। उसकी पुस्तक **'विंडीकेशन ऑफ दी राइट्स ऑफ विमिन'** में स्त्रियों को कानूनी, राजनीतिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में समानता प्रदान करने के लिए सशक्त समर्थन दिया गया है। वे कहती हैं कि ''स्त्रियों को उनके शैशवावस्था से बताया जाता है, उनके माँ के उदाहरण से यह शिक्षा दी जाती है कि मानवीय दुर्बलता का अल्पज्ञान, जिसे उचित ही चालाकी का नाम दिया गया है, मिजाज की मृदुलता, ऊपरी आज्ञाकारिता और बचकाने प्रकार के स्वामित्व के प्रति कर्तव्यनिष्ठ अवधान, उन्हें पुरूषों की सुरक्षा सुलभ करायेगा और यदि वे कहीं रूपसी हुई तो अन्य सभी वस्तुएँ अनावश्यक होंगी, कम से कम जीवन के बीस वर्षों तक।''[5]

उसने मुख्यतः औरतों के बारे में रूसो के विचारों पर कड़ा प्रहार किया और अपनी पुस्तक में उनके तर्कों की काट रखी। उसने चार आधारों[6] पर पुरूष प्रधान समाज को चुनौती दी, **सर्वप्रथम** इस बात को स्वीकार करने से इंकार किया कि स्त्रियाँ बुद्धि के मामले में पुरूषों से कमजोर हैं अथवा नाजुकता तथा भावुकता उनका नैसर्गिक गुण है, **द्वितीय आधार** यह था कि यदि पुरूष और महिलाएँ बुद्धि की समान अधिकारी है तो उसका प्रयोग करने कि शिक्षा भी उन्हें समान रूप से दी जानी चाहिए। **तीसरा आधार** था कि चूंकि पुरूषों और महिलाओं की समान मानसिकता ईश्वर प्रदत्त बुद्धि के अधिकार की हिस्सेदारी पर आधारित है अतः इन दोनों लिंगों के नैसर्गिक गुण समान होने चाहिए। **चौथे** तर्क में उसने समान गुणवत्ता के विचार के आधार पर समान अधिकारों की बात को उठाया जो आगे चलकर राजनीतिक उदारवाद की विचारधारा का एक बिन्दु बन गया। वोल्सटन क्रॉफ्ट के इन विचारों से महिला मानवाधिकार अवधारणा को राह मिली और राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक अधिकार सम्बन्धी आन्दोलन का जन्म हुआ।[7]

वोल्सटन क्रॉफ्ट की तरह ही मिलका भी मानना था कि कथित स्त्रियोचित गुण सामाजिक परिवेश में रचते बसते हैं। वोल्सटनक्राफ्ट और मिल दोनों इस बात की ओर इशारा करते हैं कि महिलाएँ मानव जाति की सदस्य होने के नाते तार्किक विचारों में सक्षम होती हैं और पुरूषों की तरह समान प्राकृतिक अधिकारों की हकदार होती है। स्त्रियों के गुण सामाजिक अनुकूलन की उपज होते हैं जो महिलाओं की प्राकृतिक विशिष्टताएँ होने के बजाय मुख्यतः यौन वस्तुओं के रूप में गढ़े जाने का नतीजा होती हैं। उनकी कथित प्राकृतिक कमजोरियाँ उनकी अतार्किकता और उनके स्वच्छंद मन वास्तव में उनमें शिक्षा की कमी, चयन की आजादी का अभाव, पुरूषों पर निर्भरता तथा उनके दोषपूर्ण समाजीकरण की उपज होती है। उन दोनों ने काफी उग्र लगने वाला प्रस्ताव रखा कि अपने पतियों के दुर्व्यवहार से बचने के लिए महिलाओं के पास सहारा होना चाहिए।[8] पूंजीवाद की आलोचना करते हुए काल्पनिक समाजवादियों ने महिलाओं की अधिकारहीन स्थिति को अपनी विचारधारा के केन्द्र में रखा। उन्होंने सामाजिक एवं आर्थिक कार्यों में महिला एवं पुरूष की समान भागीदारी पर जोर दिया। हालांकि वैज्ञानिक समाजवादी कार्लमार्क्स ने महिला प्रश्न को प्रत्यक्ष रूप से सम्बोधित नहीं किया तथापि उसकी 'शोषण', 'अलगाव', 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद', 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या' तथा 'अतिरिक्त मूल्य' के सिद्धान्त ने महिलाओं के अधिकारों में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में योगदान किया। मार्क्स के सहयोगी **एंगेल्स** ने अपनी पुस्तक **'फैमिली, प्राइवेट प्रापर्टी एण्ड ओरिजन ऑफ द स्टेट'** में महिला स्थिति को व्याख्यापित करने हेतु मार्क्सीय अवधारणा का प्रयोग किया। उसका मानना था कि महिलाओं की दासता के प्रश्न को समझने के लिए हमें इतिहास में जाना होगा, वैज्ञानिक आधारों पर यह स्पष्ट नहीं की जा सकती। उनका मानना था कि परिवार के दायरे में पति बुर्जुआ होता है और पत्नी सर्वहारा।[9] **सीमोन द बुआ** ने नारी अधिकारवादी अवधारणा को एक नया रूप दिया। उसने सेक्स एवं जेण्डर में अंतर करते हुए सिद्ध किया कि स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बनायी जाती है।[10]

सीमोन द बुआ के अनुसार ''प्रागैतिहासिक यायावर मानव समाज में शारीरिक कमजोरी के बावजूद औरत पुरूष की इतनी अधीनस्थ नहीं थी कि वह गुलाम कहलाए। विवाह किसी भी रूप में किसी रहस्यमय बंधन की कुंजी नहीं था। औरत केवल अपने कबीले से जुड़ी थी वह पति की दासी नहीं थी बल्कि बच्चे के जीवन के लिए माँ की जरूरत थी बच्चा उसके शरीर का अंश या उसके द्वारा पोषित था। अतः स्त्री कबीले की जीवनदायिनी शक्ति थी। परिवार में उसे प्राथमिकता प्राप्त थी। प्रायः वंश का नाम माँ के नाम से चलता था। सामूहिक सम्पत्ति का स्वामित्व भी औरत के पास था। वह अपने बच्चों

के माध्यम से इस सम्पत्ति की रक्षा करती थी। औरत की तुलना धरती से की गयी क्योंकि वह धरती की तरह उर्वरा थी, जीवनदात्री थी। वह फलवती थी तथा सृजन की सारी प्रक्रिया एक प्रकार का जादूई निवेदन था। पूरे पश्चिम एशिया में वह भिन्न–भिन्न नामों से पूजी गई। उदाहरण के लिए बेबीलोन में वह ईश्वर कहलाई, सामी लोगो में अस्ताते और गाइया, ग्रीक सभ्यता में रिया और सिविस तथा इजिप्ट में आइसिस। ये प्राचीन युग हमें कोई साहित्य नहीं देते किन्तु महान पितृसत्तात्मक समाज अपने शिलालेखों और कालातीत परम्पराओं में उन आकृतियों को संजोये हुए है जब स्त्री को समाज में सर्वोपरि स्थान मिला हुआ था। इससे यह तो साबित होता है कि आदि काल में समाज मातृसत्तात्मक था।[11] मातृसत्तात्मक समाजों में नारियों की स्थिति विकसित तथा समर्पित थी। एंगेल्स ने सामाजिक विकास के अध्ययन के आधार पर यह दिखाया था कि किस प्रकार सारी दुनिया में सभ्य समाज के पहले का प्रागैतिहासिक समाज न सिर्फ मातृसत्तात्मक था अपितु समाज के विकास की प्रक्रिया में वह अब तक सबसे लम्बा काल भी था।[12]

मातृसत्तात्मक समाज में स्त्री को आचरण की सुविधा थी तथा स्त्री से शुद्धता एवं शुचिता की अपेक्षा कम की जाती थी। व्यभिचार के विरूद्ध इतने कड़े नियम नहीं थे।[13]' **एंगेल्स**' ने बताया ''नारी का पतन उस वक्त शुरू हुआ जब चन्द हजार वर्षों पहले पितृसत्तात्मक समाज वर्ग ने आदिम साम्यवादी समाज को उखाड़ फेंका।[14] एंगेल्स कहते हैं, मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक समाज में अवतरण वास्तव में औरत जाति की सबसे बड़ी हार थी।[15] अंततः सभी धर्मों में पितृसत्तात्मक ढाँचों को मजबूत करने के लिए स्त्रियों को संस्कृति और परम्परा के नाम पर दोयम दर्जे का नागरिक बनाने वाली रूढ़ियाँ पनपने लगीं।[16]

स्त्रियों के उत्पीड़न और दासता का इतिहास उतना ही पुराना है जितना असमानता और उत्पीड़न पर आधारित सामाजिक संरचनाओं के उद्भव और विकास का इतिहास। प्राचीन साहित्य में ढ़ेरों मिथक और कथाएँ मौजूद हैं जो पुरूष स्वामित्व की सामाजिक स्थिति के विरूद्ध स्त्रियों के प्रतिरोध और विद्रोह का साक्ष्य प्रस्तुत करती है।[17] विश्व के इतिहास में आज भी औरत चाहे वह पश्चिमी विकसित राष्ट्रों की हो अथवा पूरब के विकासशील राष्ट्रों की पितृसत्तात्मक समाज में एक उपनिवेश ही है।[18]

हालांकि प्राचीन समाज ने औरत की यह अधीनस्थता इतने खुले रूप में नहीं स्वीकारी थी किन्तु ज्यों–ज्यों पुरूष का आत्मगौरव बढ़ा प्रकृति का शोषण चालाकी से करने के साथ ही वह युक्तिसंगत ढंग से औरत का भी शोषण करने लगा। इसके बाद मातृत्व की महानता को पुरूष ने अपदस्थ करना शुरू कर किया। आदिम समाज के सम्पूर्ण अध्ययन के बाद लवीसत्रास ने कहा कि सत्ता चाहे सार्वजनिक हो या सामाजिक वह हमेशा पुरूष के हाथ रही। स्त्री हमेशा अलगाव में रही। उसे यदि पुरूष ने देवी का रूप दिया तो इतना ऊँचा उठा दिया, निरपेक्ष रूप से इतनी पूज्या बना दिया कि मानवजीवन उसे प्राप्त ही न हो सका। लवीसत्रास का कहना है कि आदिम समाज से आज तक स्त्री को हमेशा पुरूष के संरक्षण में रहना पड़ा है। बाल्यावस्था में पिता के अधीन और युवावस्था में पति के अधीन तथा वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन।[19]

इस प्रकार स्त्री की हीनता एवं दोयम स्थिति का एक प्रमुख कारण प्राचीन कालीन पारिवारिक व्यवस्था को माना जा सकता है।पुरूष वर्ग ने अपनी इस प्रतिष्ठा को प्रतिपादित करने के लिए स्त्रियों की स्थिति को ईश्वर रचित सिद्ध करने का प्रयास किया।[20]

'सीमोन द बुआ' कहती है ''विधायकों, पुरोहितो, दार्शनिकों, लेखकों और वैज्ञानिकों ने अब तक यह दिखाने की चेष्टा की है कि औरत की अधीनस्थ स्थिति स्वर्ग में ही बनाई गई है और पृथ्वी पर उसको सुविधाएँ मिलती हैं। जिस धर्म का अन्वेषण पुरूष ने किया, वह उसकी आधिपत्य की इच्छा का अनुचिंतन है।[21]

यूरोपीय समाज के बाद के विकास में क्रमशः आधुनिक पूंजीवाद के विकास तक आते–आते हम देखते हैं कि यूरोपीय धर्मों में देवियों का कोई स्थान नही रह गया। इस मायने में ईसाई धर्म की विजय को पूर्णरूपेण पितृसत्तात्मक समाज की विजय के रूप में देखा जा सकता है। वैदिक साहित्य में व्यक्त मातृसत्ता के अन्त और पितृसत्ता की उत्पत्ति की वास्तविकता

को रखते हुए 'एस.ए. डाँगे' ने अपनी पुस्तक ''भारत आदिम साम्यवाद से दास प्रथा तक का इतिहास'' में वर्ण विनियम और निजी सम्पत्ति की उत्पत्ति के साथ मातृसत्ता के लोप की प्रक्रिया को दिखाया है।[22] इतिहास में सांस्कृतिक वर्चस्व के कारण धर्माचार्यों, दार्शनिकों, कलाकारों, चिंतकों, कवियों ने स्त्री के प्रति अत्यन्त नकारात्मक दृष्टिकोण रखा है। आदिकाल से ही विचारक स्त्रियों की केवल कमियों को अभिव्यक्त करते रहे हैं और उन्हें किसी भी प्रकार के अधिकारों व स्वतंत्रताओं से वंचित रखा गया। प्राचीन राजनीतिक चिंतन में प्लेटो स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार देने की बात करता है। यद्यपि यह भी सत्य है कि उसका अंतिम उद्देश्य एक आदर्श राज्य की सृष्टि करना था और वह स्त्रियों को अधिकार इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु प्रदान करता था। तथापि उसके द्वारा स्त्री पुरूष में योग्यता होने पर समान रूप से दार्शनिक शासक बनने का अधिकार देना स्त्री अधिकारों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है। प्लेटो के पश्चात् एक लम्बे समय तक पाश्चात्य राजनैतिक चिंतन में कोई भी चिंतक महिला अधिकारों अथवा स्त्री पुरूष समानता की बात नहीं करता।[23] वस्तुतः मध्ययुगीन काल तक संपूर्ण विश्व में यह संकल्पना थी कि स्त्री का स्थान पुरूष से निम्न है। स्त्री का महत्व केवल एक पत्नी अथवा माता के रूप में ही था। उन्हें सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक और आर्थिक किसी भी क्षेत्र में पुरूषों के समान अधिकार नहीं थे।

महिला मानवाधिकारों के प्रति वास्तविक योगदान उन लोगों का था जिन्होंने सबसे पहले महिला शिक्षा एवं उनके घर से बाहर निकलने के बार में सोचा।[24] इनमें सबसे गौर करने लायक बात यह थी कि स्वयं महिलाओं ने भी पुरूषों से समानता की बात करते हुए कलम उठायी थी। एक बात पर सबसे अधिक बल दिया गया कि महिलाओं और पुरूषों के बीच का फर्क उनकी निजी प्रकृति से नहीं बल्कि शिक्षा और महिलाओं को मिलने वाले सामाजिक परिवेश की वजह से है। लड़कियों को भी लड़कों की तरह शिक्षा दी जाये यह माँग उठ गयी थी। इंग्लैण्ड की तरह इतिहासकार कैथरिन मैकाले (1713–91) ने अपने पत्रों (1790) में यहाँ तक माँग उठायी कि लड़कों के पाठ्यक्रमों में भी ऐसे विषयों को जोड़ा जाना चाहिए जो विषय मूलतः स्त्रियों की दक्षता के विषय मे माने जाते हैं।[25] लेकिन फिर भी मध्यकालीन यूरोप मे स्त्रियों की स्थिति बहुत दयनीय थी। वहाँ न केवल उन्हें धर्मद्रोही और डायन कहा जाता था बल्कि बहुतों को तो जन्मते ही गड्ढ़े में फेंक दिया जाता था।[26]

वस्तुतः महिला अधिकारों के विचार का प्रारम्भ 15वीं शताब्दी के आरम्भ से ही फ्रंसीसी महिला **क्रिस्टीन द पीजन** (1364–1430) की पुस्तक **द बुक ऑफ द सिटिज ऑफ लेडीज** (1405) द्वारा हो गया था। उनका विश्वास था कि महिलाएँ एक केन्द्रीय भूमिका का निर्वाह कर सकती है।[27] 17वीं शताब्दी के दौरान अनेक महिला लेखकों ने भी स्त्री शिक्षा के अधिकार की माँग की। फ्रांस की **मेरी द गोर्नी** ने अपनी पुस्तक **इगेलिट डेस होम्स एट डेस फेमेस** (1641) में स्त्री शिक्षा के लिए तर्क वितर्क करते हुए महिलाओं की निम्न प्रस्थिति के लिए उनमें शिक्षा के अभाव को जिम्मेदार माना। इनके अतिरिक्त **अन्ना मारिया वेन स्क्रमस** ने अपनी पुस्तकों **द लर्नड मेड वेदर अ मेड, मे बी स्कॉलर, एफ्रा बेहन** ने अपने नाटक **ज्वैलस ब्राइडग्रुम** एवं ब्रिटिश महिला **मेरी अस्टेल** ने अपनी रचना **ए सीरियस प्रपोजल टू द लेडीज फॉर द एडवांसमेंट आफ देयर द्रु एण्ड ग्रेरटेस्ट इंट्रेस्ट** के अन्तर्गत **क्रीस्टीन द पीजन**का अनुसरण किया।[28]

तत्पश्चात् स्त्रियों के सामाजिक अधिकारों एवं स्त्री पुरूष समानता की माँग प्रबोधनकालीन बुजुर्आ क्रान्तियों से हुई। प्रबोधनकाल के विचारकों ने स्त्रियों की उत्पीड़ित स्थिति को मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों का उल्लघंन माना था।

जॉ ऑतुओं कोन्दोर्से (1743–94) प्रबोधनकाल के ऐसे विचारक थे जो धर्म के आलोचक, विश्वासों के विरोधी और वैज्ञानिक प्रगति के पक्षधर थे। अपने इसी विश्वास के तहत् वे स्त्रियों की समानता के प्रबल पक्षधर थे उनकी मान्यता थी कि स्त्रियों के बारे में समाज में मौजूद गहरे पूर्वाग्रह उनकी असमानतापूर्ण सामाजिक स्थिति के मूलभूत कारण है। ''आदर्श'' समाज की अपनी इसी अवधारणा के चलते कोन्दोर्से ने सामाजिक श्रेणियों का विरोध किया और राजनीतिक समानता का उत्कृष्ट समर्थन किया।[29]

अमेरिकी क्रांति (1776–83) के दौरान **मर्सी वारेन** और **एबिगेल एडम्स** के नेतृत्व में स्त्रियों ने पहली बार मताधिकार और सम्पत्ति के अधिकार सहित सामाजिक समानता की माँग करते हुए जॉर्ज वाशिंगटन और टॉमस जैफर्सन पर दबाव डाला कि इन्हें संविधान में शामिल किया जाये पर बुर्जुआ वर्ग के बड़े हिस्से के विरोध के कारण यह सम्भव नहीं हो सका।[30]

उल्लेखनीय है कि यूरोप में संगठित नारी आंदोलन की शुरूआत भी फ्रांसिसी क्रांति के दौरान ही हुई थी जब स्त्रियाँ भी समस्त राजनीतिक जनक्रांतियों में खुलकर हिसा ले रही थीं। उसी समय स्त्री अधिकारों के लिए संघर्ष को समर्पित पहली पत्रिका का प्रकाशन हुआ था और 'विमेन्स रिवोल्यूशनरी क्लबों' का भी गठन हुआ था जो सम्भवतः आधुनिक विश्व इतिहास के प्रथम स्त्री संगठन थे। इन संगठनों ने क्रांतिकारी संघर्षों में भाग लेते हुए यह माँग की कि स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धान्तों को किसी किस्म के लिंगभेद के बिना लागू किया जाना चाहिए।

इसी काल में स्त्री अधिकारों से सम्बन्धित दो महत्वपूर्ण दस्तावेज प्रकाशित हुए। इनमें से प्रथम था–**'ओलिम्पी द गूजे'** (1748–93)। इसने मनुष्य और नागरिक अधिकारों की घोषणा के मॉडल पर स्त्री और स्त्री नागरिक के अधिकारों की घोषणा तैयार की और उसे 1791 में राष्ट्रीय असेम्बली के समक्ष प्रस्तुत किया। इस घोषणा पत्र में स्त्रियों पर पुरूषों के शासन का विरोध किया गया था और सार्वजनिक मताधिकार को अमल में लाने के लिए स्त्री पुरूष के बीच पूर्ण सामाजिक राजनीतिक समानता की माँग की गयी थी तथा दूसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण दस्तावेज **मेरी वोल्सटन क्रॉफ्ट** की पुस्तक **'ए विण्डिकेशन ऑफ दी राइटस ऑफ वीमेन्स''**1992 थी। यह पुस्तक ''ओलम्पी द गूजे'' के दस्तावेज की स्थापनाओं को उन्नत और विस्तृत रूप में प्रस्तुत करती है। 19वीं–20वीं सदी के नारीवादी आन्दोलन की बुनियादी रूपरेखा इस पुस्तक में ही दिखाई देती है।[31] मेरी वोल्सटन क्रॉफ्ट ने इस पुस्तक में स्पष्ट शब्दों में यह स्थापना की कि कोई भी समतावादी नहीं हो सकता जब तक कि वह स्त्रियों को समान अधिकार और अवसर देने व उसकी हिफाजत करने की हिमायत नहीं करता।[32]

नारियों के अधिकार की यह विचारधारा **सेंट साइमन, फुरियर तथा राबर्ट ओवेन** की तरह के काल्पनिक समाजवादियों के कार्यों से नारीवादी आंदोलन के और भी कई प्रमुख मुद्दे उभर कर सामने आये। **पहला** मुद्दा यह कि स्त्री को पुरूष के समान अधिकार वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं मिल सकते हैं। इस व्यवस्था को पूरी तरह बदलना होगा। निजी सम्पत्ति का नाश करना होगा और एक नये समाज की रचना करनी होगी जिसमें स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से तथा कानूनी दृष्टि से भी स्वतंत्र होगी। **दूसरा** उन्होंने स्त्री और पुरूष के बीच श्रम के परंरागत विभाजन पर करारा प्रहार किया। उत्पादन कार्य में महिलाओं की समान भागीदारी के साथ ही घरेलू कामों में पुरूषों के द्वारा हाथ बंटाने की जिम्मेदारी पर भी उन्होंने बल दिया। **तीसरा** परिवार नाम की संस्था की धज्जियाँ उड़ायीं, इसे पुरूष शक्ति के स्रोत के रूप में बताया गया, जो समाजवादी विचारधारा के बिलकुल विरूद्ध है तथा स्वतंत्र चयन के अधिकार का दमन करता है। इस प्रकार समान अधिकारों की उदारतावादी विचारधारा को एक पूर्ण सामाजिक, आर्थिक आधार पर स्थापित किया गया।[33]

काल्पनिक समाजवाद का नारीवादी चिंतन सबसे समग्र रूप से **विलियम थॉम्पसन** (1775–1844) की प्रसिद्ध पुस्तक **'अपील ऑफ द वन हाफ द ह्यूमन रेज वुमेन अगेन्स्ट द प्रीटेन्सन्स ऑफ द अदर हाफ मैन टू रीटेन देम इन पॉलिटिकल एण्ड देन्स सिविल एण्ड डोमेस्टिक स्लेवरी'** में सामने आया। थॉम्पसन ने यह प्रसिद्ध पुस्तक प्रसिद्ध समाजवादी नारीवादी अध्यापक **'अन्ना व्हिलर'** के साथ मिलकर लिखी थी। यह पुस्तक वास्तव में जेम्स मिल के एक लेख के जवाब में थी जिसमें 'जेम्स मिल' ने यह कहा था कि चूंकि महिलाओं का अपने पिता या पति से अलग कोई हित नहीं होता, इसलिए उनके स्वतंत्र राजनीतिक प्रतिनिधित्व की कोई जरूरत नहीं है। मिल के इस कथन पर करारा प्रहार करते हुए थॉम्पसन ने सिर्फ महिलाओं के लिए पूर्ण राजनीतिक अधिकारों और उनकी समान बौद्धिक क्षमताओं की बात ही नहीं की बल्कि दो कदम आगे बढ़कर महिलाओं को शारीरिक दृष्टि में पुरूषों से कहीं ज्यादा श्रेष्ठ बताया। इसके साथ ही थॉम्पसन ने एक उदार नारीवादी सीमाओं को लाँघते हुए यहाँ तक कहा कि महिलाओं के समान अधिकार तभी सार्थक होंगे

जब निजी सम्पत्ति और प्रतियोगिता के स्थान पर समाज का आधार एक साझा और सहकार होगा। इस प्रकार विलियम थॉम्पसन ने महिला आंदोलन के एक नये दृष्टिकोण की ओर संकेत किया जिसमें महिलाओं के लिए समान अधिकार की माँग करते हुए भी उन्हें अनिवार्य रूप से सामाजिक संबंधो व उत्पादन संबंधों के साथ जोड़कर देखने पर बल दिया गया। थॉम्पसन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता, उनकी वास्तविक स्वतंत्रता के लिए जरूरी है।[34]

महिला अधिकारों का आन्दोलन 18वीं शताब्दी से उस समय सुदृढ़ हुआ जब लोगों को यह महसूस होने लगा कि महिलाओं का इस पुरूष केन्द्रित समाज में दमन किया जा रहा है। 18वीं सदीं के अन्त एवं 19वीं सदी के प्रारम्भिक काल में महिला लेखकों द्वारा रचित अनेक उपन्यासों ने भी महिलाओं की भूमिका को स्पष्ट किया। कुछ ऐसी उपन्यासकार है–जेन ऑस्टेन (1775–1817), चारलोफ ब्रॉन्टे (1816–1855), मैडम डे स्टेल (1760–1817), फेनी बर्ने (1752–1840) इत्यादि।[35]

19वीं सदी तक आते–आते महिलाओं के लिए समान अधिकार की माँग एक प्रमुख राजनीतिक प्रश्न की शक्ल लेने लगी। शिक्षा कानून, राजनीति आदि तमाम क्षेत्रों में एक आंदोलन सा शुरू हो गया तथा महिलाओं के लिए मतदान के अधिकार की माँग ने एक जन अभियान का रूप ले लिया। इस दौर के प्रमुख नारीवादी विचारकों में मुख्य रूप से इंग्लैण्ड के **जॉन स्टुअर्ट मिल** तथा उनकी पत्नी **हेरियट टेलर** तथा अमेरिका की **एलिजाबेथ कैडी स्टैन्टन** का जिक्र किया जा सकता है, जिनके लेखन में इस पूरे दौर के नारीवादी सोच की सभी प्रमुख बातें निहित है। स्टैन्टन सिर्फ लेखिका ही नहीं बल्कि आधी सदी से भी ज्यादा काल तक अमरीका के नारी आंदोलन की सक्रिय कार्यकर्ता रही थीं। उन्होंने ही प्रसिद्ध **'सेनेकाफाल कन्वेशन ऑफ 1848'** लिखा जो 1776 के अमरीका की स्वतंत्रता की घोषणा के तर्ज पर ही लिखा गया एक ऐसा घोषणा पत्र था जिसमें महिलाओं के लिए मतदान का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, रोजगार का अधिकार तथा राजनीति और गिरजाघरों में सार्वजनिक भागीदारी के अधिकार की माँग उठायी गई थी।[36]

ज्ञातव्य है कि अमेरिकी जनता द्वारा 1778 में प्रतिनिधित्व की माँग की गयी थी। इसी समय अमरीकी महिलाओं द्वारा भी मताधिकार की माँग पहली बार की गयी। दूसरी और ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति के शुरूआत से ही महिला अधिकारों की माँग की जाने लगी थी परन्तु वहाँ के उदारवादी विचारक स्त्रियों को मताधिकार देने के पक्ष में नही थे। सन् 1831 में मजदूर श्रमिक वर्ग के राष्ट्रीय संगठन ने पुरूषों के साथ–साथ स्त्रियों के मताधिकार की माँग प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की। फलस्वरूप 1838 में मताधिकार आंदोलन के नेताओं ने जनता के घोषणा पत्र में स्त्रियों के मताधिकार की भी बात की परंतु कालांतर में तीव्र विरोध के चलते स्त्री अधिकारों से संबंधित अधिकांश अंशों को इस घोषणा पत्र से हटाना पड़ा।[37]

यह काल नारीवाद की प्रथम लहर का काल था। 19वीं सदी को स्त्रियों की शताब्दी कहना बेहतर होगा क्योंकि इस सदी में सारी दुनिया में उनकी अच्छाई, बुराई, प्रकृति, क्षमताएँ एवं उर्वरा गर्मागर्म बहस के मुद्दे थे। यूरोप में फ्रांसीसी क्रांति के दौरान और उसके बाद ही स्त्री जागरूकता का विस्तार होना शुरू हुआ और शताब्दी के अंत तक इंगलैण्ड, फ्रांस तथा जर्मनी के बुद्धिजीवियों ने नारीवादी विचारों को अभिव्यक्ति दी। 19वीं सदी के मध्य तक रूसी सुधारकों के लिए 'महिला प्रश्न' एक केन्द्रीय मुद्दा बन गया था।[38]

1840 के दशक का अन्त आते–आते पूरे यूरोप के राजनीतिक, सामाजिक परिदृश्य पर उठ खड़े हुए झंझावतों का प्रभाव नारी आन्दोलन पर भी पड़ा। दो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए एक का फौरी आन्दोलनात्मक महत्व था और दूसरे का दूरगामी विचारधारात्मक महत्व था।

प्रथम परिवर्तन यह हुआ कि 1848–49 की क्रान्तियों तथा जून 1848 के पेरिस मजदूर विद्रोह के बाद महाद्वीप व्यापी मजदूर उभार ने स्त्रियों के राजनीतिक एवं नागरिक अधिकारों के संघर्ष को नया संवेग प्रदान किया। 1848 में ही फ्रांस में फिर से नारी क्लबों का गठन हुआ जिन्होंने स्त्रियों के समान राजनीतिक अधिकारो का संघर्ष नये सिरे से शुरू किया। इसी वर्ष फ्रांस में स्त्री मजदूरों के पहले स्वतंत्र संगठन की स्थापना हुई। स्त्रियों के राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष के उद्देश्य से जर्मनी और आस्ट्रिया में भी यूनियनें गठित हुई। जुलाई, 1848 एक सुनिश्चित कार्यक्रम के आधार पर नारीवादी आंदोलन

का प्रस्थान बिन्दु बना जब सेनेकाफॉल्स, न्यूयार्क में **एलिजाबेथ कैण्डीस्टेन्टन और लुकोसिमा कफिन मोट** आदि की पहल पर प्रथम नारी अधिकार कांग्रेस का आयोजन हुआ और नारी स्वतंत्रता का घोषणा पत्र जारी किया गया जिसमें पूर्ण कानूनी समानता, पूर्णतः समान शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसर, समान वेतन, मजदूरी कमाने के अधिकार तथा वोट देने के अधिकार की माँग की गयी। दूसरा परिवर्तन जिसका युगान्तकारी महत्व आगे सामने आना था, वह था मार्क्स और एंगेल्स के सैद्धान्तिक, व्यावहारिक कार्यों के प्राथमिक चरण की परिणति के तौर पर वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा का जन्म, जिसने सम्पूर्ण मानव इतिहास की व्याख्या और सर्वहारा क्रान्ति की अवधारणा के साथ ही स्त्री प्रश्न की भी एक नई सांगोपांग ऐतिहासिक वैज्ञानिक व्याख्या तथा इसके समाधान की एक ठोस रूपेरखा प्रस्तुत की। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि निजी सम्पत्ति पर आधारित सामाजिक सम्बन्धों, संस्थाओं, मूल्यों के अस्तित्व में आने के साथ ही स्त्री समुदाय की दासता की शुरूआत हुई। उन्होंने बताया कि बेबस स्त्रियों और बच्चों की सस्ती श्रमशक्ति की लूट पूंजीवादी समृद्धि की अट्टालिका की एक महत्वपूर्ण आधारशिला है। उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के समाजीकरण के साथ ही स्त्रियोचित कार्यों का भी समाजीकरण हो सकता है और स्त्री उत्पीड़क सम्बन्धों, संस्थाओं के न्यायपूर्ण विकल्प खड़े हो सकते हैं अर्थात् स्त्री समुदाय की सच्ची मुक्ति की दिशा में पहला कदम पूंजीवादी व्यवस्था का खात्मा है।[39]

19वीं सदी के मध्य में स्त्री आंदोलन गतिरोध से उबर कर नया संवेग ग्रहण कर रहा था। एलिजाबेथ कैण्डी स्टैन्टन तथा सूसन ब्राउनवेल एन्थनी के नेतृत्व में अमेरिका में तेजी से फैलता स्त्री आन्दोलन यूरोपीय महाद्वीप तक आ पहुँचा। स्त्री आन्दोलनों तथा विभिन्न जनवादी और सर्वहारा आन्दोलन के दबाव के साथ ही पूंजीवादी उत्पादन की अपनी जरूरतों तथा तकाजों ने भी स्त्री शिक्षा और स्त्री श्रम सम्बन्धी कानूनों के निर्माण तथा स्त्रियों की कानूनी स्थिति के आम सुधार में एक अहम् भूमिका निभायी। 1847 में ब्रिटेन में स्त्रियों के लिए 10 घंटे कार्य निर्धारित किया गया, जिसे मार्क्स–एंजेल्स ने मजदूर वर्ग की एक महान् विजय बताया था। स्त्री मजदूरों के संरक्षण संबंधी कुछ और भी कानून पारित हुए।[40]

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में यूरोप और अमेरिका में स्त्रियों की कई यूनियनें गठित हुई जिनमें जर्मनी की जनरल वीमेन्स यूनियन (1865) प्रमुख थी। इन यूनियनों का लक्ष्य स्त्री शिक्षा के लिए और स्त्री श्रम पर पाबन्दियों के विरूद्ध संघर्ष करना था। ब्रिटेन की स्त्रियाँ 1860 तक शिक्षण के अतिरिक्त कई अन्य कार्यों का अधिकार हासिल कर चुकी थीं। 1858 में पहली बार तलाक लेने का भी अधिकार मिल गया (हालांकि 1938 तक यह सीमित रूप में ही लागू था) 1860 तक आते–आते न सिर्फ ब्रिटेन में बल्कि कमोबेश पूरे यूरोप और अमरीका में स्त्री आन्दोलन की मुख्य धार मताधिकार के प्रश्न पर केन्द्रित हो चुकी थी।[41]

ब्रिटेन में जॉन स्टुअर्ट मिल उस समय तक स्त्री अधिकारों के मुखर पक्षधर के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। मिल पर उनकी पत्नी हैरियट टेलर की प्रतिभा, योग्यता, रचनाशीलता और सौन्दर्य ने गहरा प्रभाव डाला। हैरियट के जीवन एवं विचारों ने मिल की इस धारणा को मजबूत बनाया कि स्त्रियाँ बौद्धिक क्षमता में कदापि पुरूषों से पीछे नहीं है और यह उनकी सामाजिक पराधीनता ही है जो उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व व सृजनात्मकता को कुचलकर रख देती है।[42]

मिल स्त्रियों को वयस्क मताधिकार देने के जोरदार समर्थक थे। 1867 में उन्होंनें संसद में इस आशय का प्रस्ताव रखा जो पारित न हो सका। इसकी देशव्यापी तीव्र प्रतिक्रिया हुई और बहुत से शहरों में स्त्री मताधिकार सोसायटियों का गठन हो गया। बाद में इन सबने मिलकर राष्ट्रीय एसोसिएशन का गठन किया। अमरिका में दो स्त्री मताधिकार संगठन 1869 में गठित हुए और 1890 में स्त्री मताधिकार संगठनों का राष्ट्रीय महासंघ अस्तित्व में आया। फ्रांस में इसी उद्देश्य से 1882 में फ्रांसीसी स्त्री अधिकार लीग का गठन हुआ।[43]

स्त्रियों के मताधिकार का तर्क मिल इस बुनियादी स्थापना से नियमित करते हैं कि पुरूष चूंकि स्त्रियों के बारे में लगभग कुछ नहीं जानते इसलिए वे स्त्रियों की योग्यता या कार्यों को निर्धारित करने वाले कानून बना ही नहीं सकते। जरूरी है कि स्त्रियों को अपने कार्य के चुनाव की स्वतंत्रता दी जाये। जब तक ऐसा नहीं होगा, तब तक विवाह के अतिरिक्त अन्य

सभी विकल्पों के दरवाजे उनके लिए बन्द ही रहेंगे। उनका विश्वास था कि स्त्री पुरूष के बीच कानूनी समानता न केवल दोनों के लिए न्यायपूर्ण और सुखद होगी बल्कि मनुष्य के दैनिक जीवन को अधिक नैतिक भी बनायेगी और केवल तभी परिवार सत्ता और आज्ञाकारिता के केन्द्र बनने के बजाये स्वतंत्रता के गुणों का अहसास कराने वाली सामाजिक संस्था में रूपान्तरित हो सकता है।[44]

अपनी पुस्तक **'ऑन दी सब्जेक्शन ऑफ वुमेन' जे एस मिल** ने 1861 में लिखी थी जो 1869 में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में मिल इस वर्चस्ववाद की स्वीकार्यता के आधार के तौर पर काम करने वाली सभी प्रस्तरीकृत मान्यताओं, संस्कारों, रूढ़ियों को और स्थापित कानूनों को तर्कों के जरिये प्रश्नचिन्हों के कठघरे में खड़ा करते हैं।[45]

इस पुस्तक में उन्होंने महिलाओं के उत्पीड़न में आर्थिक और सामाजिक कारणों के साथ–साथ इसके उन्मूलन के लिए सुधारवादी प्रस्तावों की आलोचना प्रस्तुत की। मिल का निबंध इंग्लिश महिलाओं के संघर्ष के उस दौर में प्रकाशित हुआ था जब वहाँ की महिलाओं ने 1860 और 1890 के दरम्यान पार्लियामेन्ट में उन कानूनों को पास कराने में सफलता पाई जिनमें विवाहित महिलाओं की सम्पत्ति और कमाई पर महिलाओं के अधिकार को मान्यता दी गयी थी। विश्वविद्यालयों में महिलाओं को नामांकित किया गया और कई महिला कॉलेजों की स्थापना की गयी।

इन सारी सफलताओं के बावजूद महिलाएँ वोट देने के अधिकार से वंचित थी। 1897 में इंग्लैण्ड के तमाम महिला समूहों ने **'नेशनल यूनियन ऑफ वुमेन्स सफरेज सोसायटी'** की स्थापना की। शुरूआत में इन मताधिकार समितियों में सामान्यतः उच्च वर्ग की महिलाओं का दबदबा था, लेकिन आगे चलकर मजदूर वर्ग की हजारों महिलाओं की बढ़ती भागीदारी से उसके चरित्र में बदलाव आया।[46]

इमेलिन पन्कर्स्ट द्वारा 1903 में गठित **वुमेन्स सोशल एण्ड पॉलिटिकल यूनियन** के द्वारा कई आक्रामक कार्यवाहियाँ की गईं तथा ब्रिटिश समाज में ''संस्थागत लैंगिकवाद'' को स्पष्ट करने का प्रयास किया।[52] महिला संगठनों की आक्रामकता के साथ–साथ 1913 में सरकारी दमन भी चरम पर था। महिला संगठनों ने खिड़कियों के शीशे तोड़ने, टेलीग्राफ के तार काटने जैसे आक्रामक तरीके अख्तियार किये।[47]

सरकार ने भारी संख्या में महिलाओं को गिरफ्तार किया। गिरफ्तार महिलाएँ खाना खाने से इन्कार करती थी। उन्हें बलपूर्वक खिलाया जाता था। लिबरल सरकार ने कैट एण्ड माउस एक्ट पारित किया इसके माध्यम से जहाँ एक ओर उनके गिरते स्वास्थ्य की वजह से महिलाओं को जेल से छोड़ दिया जाता था वहीं स्वास्थ्य में सुधार आते ही उन्हें फिर से गिरफ्तार कर लिया जाता।[48]

द्वितीय विश्वयद्ध के तुरंत बाद पश्चिमी महिलाओं के लिए अस्तित्व रक्षा का सवाल जोरों से उभरा। परिणामस्वरूप पश्चिम में महिला आन्दोलन 1960 के दशक में और अधिक ताकत के साथ सामने आया। युद्ध के वर्षों ने महिलाओं को श्रम शक्ति से जुड़ते देखा। अकेले संयुक्त राज्य अमेरिका में 70 लाख महिलाओं ने ऐसे काम किये जिसके लिए उन्हें अयोग्य समझा जाता था। सरकारों ने युद्ध से छिन्न–भिन्न अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए ''बालवाड़ी और पालनाघर'' की स्थापना के लिए धन मुहैया कराया।[49] इसके साथ ही महिलाओं का घर से बाहर काम पर बिताया गया समय भी बढ़ा। यहाँ तक कि उन्हें पुरूष वर्चस्व वाले विनिर्माण और भारी उद्योगों में रखा जाने लगा परन्तु युद्ध की समाप्ति पर उन्हें काम से हटाया जाने लगा।[50]

समाजवाद ने 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक नारीवादियों के लिए अत्यन्त स्थायी, सहानुभूतिपूर्ण और सहयोग वाला वातावरण प्रस्तुत किया। नारीवादी समाजवादियों ने नारी के जीवन को सीमित करने वाली तमाम कानूनी और सांस्कृतिक परम्पराओं को रद्द करते हुए नारीवादी संदर्भ में महिलाओं के काम संबंधी नई माँगों को जोड़ा।[51]

नारीवादी आंदोलन की प्रथम लहर के दौरान महिलाओं की स्थिति में क्रमिक रूप से परितर्वन प्रारंभ हुए। सर्वप्रथम

1893 में न्यूजीलैण्ड की महिलाओं को मताधिकार प्राप्त हुआ। 1902 में आस्ट्रेलिया की महिलाओं को, 1906 में फिनलैण्ड की महिलाओं को 1920 में अमरीका की महिलाओं को तथा 1928 में ब्रिटेन की महिलाओं को मताधिकार प्राप्त हुआ।[52] जबकि फ्रांस की महिलाओं को मताधिकार के लिए 1944 तक इंतजार करना पड़ा। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ (1945) की स्थापना के साथ महिलाओं के लिए क्रान्तिकारी प्रयास प्रारंभ हुए।

1960 से 1980 तक का काल नारीवाद की द्वितीय लहर के रूप में जाना जाता है। इस काल के नारीवादी सामाजिक आर्थिक एवं कानूनी समानता प्राप्त करने की बात करते थे। इस काल में महिला पुरूषों के काम में भेदभाव एक मुख्य समस्या के रूप में उभरी। नस्ल के आधार पर भेदभाव होने से महिलाओं की जागरूकता बढ़ी तथा नये संगठनों का निर्माण होने लगा।[53]

पाश्चात्य देशों की महिलाएँ अब 'गर्भ निरोधक' एवं 'गर्भ नियंत्रण' के अधिकार की भी माँग करने लगी। जो 1960 तक निषिद्ध था। इसे वे आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का मार्ग समझती थी। इसी समय महिलाओं के लिए प्रजनन संबंधी अधिकार, राजनीति में भागीदारी एवं समान कार्य के लिए समान वेतन के अधिकार की भी माँग की गयी। इनके अतिरिक्त अनेक नारीवादियों द्वारा पुरूषों के समान ही महिलाओं के लिए 'लैंगिक स्वतंत्रता' की भी माँग की गयी। यह प्रवृत्ति 1980 के बाद से अधिक देखी गयी कुछ क्षेत्रों में नारीवादियों द्वारा तलाक के समान अधिकारों की भी माँग की गयी।[54]

इस काल के प्रमुख नारीवादियों में **सीमोन द बुआ (द सैकण्ड सेक्स), बेट्टी फ्रीडेन (द फेमिनिन मिस्टीक), सुषान बेसनेट (फेमिनिस्ट एक्सपीरिएंस) वेलरी सोलोनस, लिसे वोगेल, कैथरीन मैकनन, आन्द्रे इवारकिन** आदि नाम प्रमुख है।

लगभग 1980 के बाद का काल नारीवाद की तृतीय लहर के रूप में जाना जाता है। जिसे उत्तर नारीवाद भी कहा जाता है। इस काल में उच्च व मध्यमवर्गीय पाश्चात्य महिलाओं के अनुभवों के महत्व को नकारा गया तथा इसी समय नारीवाद की चुनौतियों की खोज की गयी। नारीवाद के तृतीय लहर के मध्य में जेण्डर व स्त्री पुरूष सम्बन्धों की व्याख्या की गयी। 1990 के दशक में पुनः महिला आन्दोलनों का जागरण हुआ।

इस प्रकार नारी अधिकारवादियों ने स्त्रियों पर युग–युगान्तर से होने वाले अन्याय और अत्याचार की ओर ध्यान खींचकर इस अन्याय से निराकरण पर जोर दिया। तबसे लेकर अब तक महिला अधिकारों के सम्बन्ध में बुनियादी बदलाव आया है। महिला अधिकारों को मानवाधिकारों के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता दी गयी है। महिला अधिकार आज राजनीतिक कार्यसूची में सर्वोच्च स्थान पर है लेकिन खेद का विषय है कि महिला मानवाधिकार आज भी वास्तविक रूप में वह स्थान नहीं बना पा रहे हैं जिनकी महिलाएँ अधिकारिणी हैं।

सन्दर्भ सूची :

1 महावर सुनील, **राज्य एवं महिला मानवाधिकार,** जयपुर, पोइन्टर पब्लिशर्स, 2011, पृ. 63

2 महावर सुनील, नोट–1, पृ. 57

3 महावर सुनील, नोट–1, पृ. 58

4 त्रिपाठी प्रदीप, **मानवाधिकार और भारतीय संविधान संरक्षण एवं विश्लेषण,** नई दिल्ली, राधा पब्लिकेशन, 2002, पृ. 58

5 क्राफ्ट मेरी वोल्सटन**, ए विंडीकेशन ऑफ दि राइट्स ऑफ विमिन,** मिनाक्षी द्वारा अनुदित, स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2003 पृ. 23

6 माहेश्वरी सरला, **नारी प्रश्न,** नई दिल्ली राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,, 1998, पृ. 42

7 महावर सुनील, नोट–1, पृ. 59

8 आर्य साधना, मेनन निवेदिता, जिनि लोकनीता, **नारीवादी राजनीति : संघर्ष व मुद्दे,** दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001, पृ. 24

9 महावर सुनील, नोट 1, पृ. 60

10 बुआ द सीमोन, **द सेकण्ड सेक्स,** प्रभा खेतान द्वारा अनुदित स्त्री उपेक्षिता, नयी दिल्ली, हिन्द पॉकेट बुक्स, 2002, पृ 52

11 बुआ द सीमोन, नोट–10, पृ. 52,54

12 माहेश्वरी सरला, नोट–6, पृ. 83

13 बुआ द सीमोन, नोट–10, पृ. 59

14 माहेश्वरी सरला, नोट–6, पृ. 86

15 बुआ द सीमोन, नोट–10, पृ. 54

16 शर्मा क्षमा, **स्त्रीत्ववादी विमर्शः समाज और साहित्य,** नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2002, पृ. 67

17 मिल जॉन स्टुअर्ट, **सब्जेक्शन ऑफ वुमेन,** प्रगति सक्सेना द्वारा अनुदित **स्त्रियों की पराधीनता,** नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2002, पृ. 5

18 कुमार राकेश, **नारीवादी विमर्श,** पंचकुला, हरियाणा, आधार प्रकाशन, 2001 पृ. 23

19 बुआ द सीमोन, नोट–10, पृ. 54,55

20 कुमार राकेश, नोट–22, पृ. 23

21 बुआ द सीमोन, नोट–10, पृ. 27

22 माहेश्वरी सरला, नोट–6 पृ. 83

23 ब्रायसन वैलरिक, **फेमिनिस्ट पॉलिटिकल थियरी,** न्यूयार्क, पैरागॉन हाउस, 1992, पृ. 1

24 अगोसिन मेजोरे, **वुमेन, जेण्डर एण्ड ह्यूमन राइट्सः ए ग्लोबल पर्सपेक्टिव,** जयपुर, रावत पब्लिकेशन, 2003, पष्ठ 16

25 माहेश्वरी सरला, नोट–6 पृ. 15

26 बुआ द सीमोन, नोट–10, पृ. 54,55

27 अगोसिन मेजोरे, नोट–28, पृ. 16

28 अगोसिन मेजोरे, नोट–28, पृ. 21

29 मिल जॉन स्टुअर्ट, नोट–21, पृ. 11

30 मेरी वोल्सटनक्राफ्ट, नोट–5, पृ. 15

31 मिल जॉन स्टुअर्ट, नोट–21 पृ. 12

32 क्राफ्ट मेरी वोल्सटन, नोट–5, पृ. 19

33 ग्रीयर जर्मन, **विद्रोही स्त्री** मधु बी. जोशी द्वारा अनुदित नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2001, पृ 68

34 माहेश्वरी सरला, नोट–6, पृ. 16,17

35 माहेश्वरी सरला, नोट–6, पृ. 17

36 अगोसिन मेजोरे, नोट–28, पृ. 28

37 माहेश्वरी सरला, नोट–6, पृ. 18

38 मिल जॉन स्टुअर्ट, नोट–21, पृ. 16,17

39 कुमार राधा, **स्त्री संघर्ष का इतिहास,** वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 23
40 कुमार राधा, नोट–43, पृ. 18
41 कुमार राधा, नोट–43, पृ. 19
42 कुमार राधा, नोट–43, पृ. 25
43 कुमार राधा, नोट–43, पृ. 19
44 कुमार राधा, नोट–43, पृ. 29
45 कुमार राधा, नोट–43, पृ. 25
46 कुमार राधा, नोट–43, पृ. 25
47 कपूर शिखा, **मानवाधिकारों के लिए महिलाओं का संघर्ष,** इण्डियन काउन्सिल ऑफ ह्यूमन राइट्स द्वारा हमारी पहल मानवाधिकार प्रशिक्षण, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, दिल्ली, 9 मई 2002
48 http://en.wikipedia.org/wiki/women'sright/10/05/2017/4:55
49 कपूर शिखा, नोट–47
50 http://en.wikipedia.org/wiki/history-of-feminism#twentithcentury
51 कपूर शिखा, नोट–47
52 पूर्वोक्त, नोट–50
53 कपूर शिखा, नोट–47
54 दीक्षित सोना, अरूण कुमार दीक्षित, **महिलाओं के मानवाधिकारों का संरक्षण,** नई दिल्ली, कुरूक्षेत्र पब्लिकेशन, मार्च 2005, पृ 10
55 कपूर शिखा, नोट–47
56. कपूर शिखा, नोट–47

दे, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली